तिब्बत की मुक्ति-साधना

प्रोफेसर सामदोंग रिनपोछे

INDIA TIBET COORDINATION OFFICE

दिल्ली

गांधी शांति प्रतिष्ठान
नई दिल्ली की ओर से आयोजित व्याख्यान

सोमवार, 14 मई, 2012 शाम 05.30 बजे

विषय: तिब्बत की मुक्ति-साधना

वक्ता: प्रोफेसर सामदोंग रिनपोछे

अध्यक्षता : राधा बहन भट्ट

संयोजन : सुरेन्द्र कुमार

लिप्यंतरण : संजीव कुमार

संपादन : राजीव रंजन गिरि

दिल्ली

इस पुस्तिका के किसी भी अंश का उपयोग किया जा सकता है। अलबत्ता लेखक-प्रकाशक या इससे संबद्ध व्यक्ति को सूचित करने पर हमें खुशी होगी।

© सामदोंग रिनपोछे

प्रथम संस्करण : 2015
द्वितय संस्करण : 2017
आईएसबीएन 978-93-83962-32-7

प्रकाशक
भारत तिब्बत समन्वय केन्द्र
एच 10, द्वितीया मंजिल,
लाजपत नगर 3, नई दिल्ली 110024
फोन : +91-11-29830578
टेलीफैक्स : +91-11-29840968
ई–मेल : indiatibet7@gmail.com
वेब साइट : www.indiatibet.com

सहयोग
गांधी शांति प्रतिष्ठान
221/223 दीन दयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली 110 002
फोन नं : 23237491, 23237493 ● फैक्स : 011-23236734
ई-मेल : gpf18@rediffmail.com

मूल्य : 20.00 रुपये

आवरण : मुन्ना कुमार
मुद्रक : वी. एन. प्रिंटर्स, ओखला फेस-।।।

तिब्बत की मुक्ति-साधना

सोमदोंग रिनपोछे

सभा की अध्यक्षा आदरणीया सुश्री राधा बहन जी, मंच पर आसीन समस्त गांधी शांति प्रतिष्ठान के संचालक मंडल के सदस्यगण, परम आदरणीय श्री सत्यप्रकाश मालवीय जी, डॉ. त्रिखा जी, डॉ. आनंद कुमार जी और मेरे बहुत से परम मित्र, सहयोगी, जो यहाँ उपस्थित हैं। सुरेंद्र जी ने कई महीने पहले मुझसे पूछा था कि 'गांधी शांति प्रतिष्ठान' में एक कार्यक्रम होना चाहिए। क्या मेरे पास समय है? अपने कार्यक्रमों में मैंने देखा कि 13 तरीख को पुणे से लौट रहा हूँ। 15 तारीख को ब्रिटेन जाना है तो बीच में एक दिन का समय दिल्ली में मिलता है। गांधी शांति प्रतिष्ठान मेरे लिए कोई नई जगह नहीं है। काफी पहले से यहाँ आता-जाता रहा हूँ। यहाँ ठहरना भी होता रहा है। बहुत सारे काम में शामिल होता रहा हूँ। सुरेंद्र जी भी उन मित्रों में से हैं जो कई प्रकार से हमारी सहायता करते रहे हैं। वैसे भी गांधीजी के कार्य-क्षेत्र के साथ-साथ तिब्बती समर्थक वर्ग और कई शैक्षणिक क्षेत्र में हम एक-दूसरे के सहयोगी रहे हैं। ऐसे में उनकी बात को टालना मेरे लिए संभव नहीं था।

मैंने उनका आग्रह स्वीकर कर लिया। लेकिन, उस समय मुझे इस बात की कल्पना नहीं थी कि यहाँ मेरे वक्तव्य के अतिरिक्त बहुत कुछ होना है। मेरा अभिनंदन किया गया। अनेक प्रकार से विभूषित किया गया। इसे मैं बड़ी विनम्रता से स्वीकार करता हूँ। हाँ, वक्तव्य शुरू करने से पहले, मैं आप सबसे एक निवेदन करना चाहता हूँ, वह यह कि आज मैं जो कुछ कहने जा रहा हूँ, वह मेरे व्यक्तिगत विचार हैं। यहाँ मैं किसी

समूह, संगठन या संस्था का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहा हूँ।

8 अगस्त, 2011 से मैं स्वयं को सार्वजनिक जीवन से अलग रखने की प्रक्रिया में हूँ। पूर्ण सेवानिवृत रूप में रहने की कोशिश कर रहा हूँ। मेरी यह कोशिश है कि किसी संस्थागत कार्य या जन समुदाय के कार्य से अलग रहूँ। हालाँकि, इस प्रक्रिया में अभी प्रयासरत हूँ। इसलिए जो कुछ यहाँ प्रस्तुत करूँगा, वह अत्यंत व्यक्तिगत विचार ही होंगे। कुछ सूचनाएँ पुरानी भी हो सकती हैं। क्योंकि, बहुत दिनों से संगठन में नहीं रहने की वजह से कई सूचनाएँ विस्तार से और आज की तिथि तक नहीं हैं। इस बात को आप सब अपने ध्यान में रखें तो उचित रहेगा।

मुझे स्मरण हो रहा है कि सुरेंद्रजी से पत्र-व्यवहार के दौरान जो बातचीत हुई थी, उसमें 'तिब्बत की वर्तमान परिस्थिति' पर प्रकाश डालने को कहा गया था। लेकिन, आज यहाँ मैं देख रहा हूँ कि विषय के रूप में 'तिब्बत की मुक्ति-साधना' लिखा है। और इस विषय पर ही मुझे कुछ कहना है। ये दोनों विषय एक-दूसरे से बहुत भिन्न नहीं हैं। परन्तु पहले पत्र-व्यवहार के अनुसार मैंने कोई विशेष तैयारी तो नहीं की थी, लेकिन दिमाग में कुछ बिंदु एकत्रित जरूर हुए हैं, जो तिब्बत की वर्तमान परिस्थितियों से संबंधित हैं। विस्तार में न जाते हुए प्रत्येक बिंदुओं को सूत्र रूप में आपके सामने रखने की कोशिश करूँगा। वैसे ये सभी सूचनाएँ आपके लिए नई होंगी, यह आवश्यक नहीं है। यहाँ जो अधिकांश लोग उपस्थित हैं, वे तिब्बती समर्थक वर्ग से जुड़े लोग हैं। मैं समझता हूँ कि आप लोगों को सभी चीजों की जानकारी रहती है, परन्तु मैं उसके दोहराव में कोई दोष नहीं समझता, क्योंकि इन सभी बिंदुओं को मिलाकर ही हम परिस्थिति को देखने की चेष्टा करेंगे। तभी तिब्बत की वर्तमान स्थिति का एक समग्र प्रतिबिंब या समग्र चित्रण या फिर उससे आज के विश्व और निकटवर्ती राष्ट्रों से संबंधों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इस पर एक स्थूल रूप से ही सही, परन्तु समग्र रूप में इसके स्वरूप को देखने का अवसर मिलेगा। इसी समझ के साथ मैं कुछ बिंदुओं को आपको सामने रखने और उस पर आपका ध्यान आकृष्ट

करने की कोशिश करूँगा।

सबसे पहले हमें तिब्बत की वर्तमान स्थिति को समझ लेना होगा। यह कोई आकस्मिक घटना से उत्पन्न परिस्थिति नहीं है। मैं समझता हूँ कि यह मात्र 60 लाख तिब्बतियों से संबंधित कोई परिस्थिति या घटना है, ऐसा नहीं माना जाना चाहिए। परम पावन 14वें दलाई लामाजी बार-बार इस बात का स्मरण दिलाते रहे हैं कि यह तिब्बतियों की एक पृथक और निजी समस्या नहीं है, बल्कि यह संपूर्ण मानव समाज की समस्या और उसके विरुद्ध होने वाली घटनाओं का प्रतिरूप है। जब तक इस व्यापक समस्या के कारणों को खोजकर उस पर ध्यान नहीं देंगे, तब तक हम तिब्बती समस्या का समाधान नहीं खोज पायेंगे।

परम पावन दलाई लामाजी के कथन को मैं अपनी दृष्टि से सही मानता हूँ। अब पिछले दो-ढाई हजार वर्ष के इतिहास पर दृष्टि डालेंगे तो पाएँगे कि तिब्बत हमेशा शक्तिशाली पड़ोसियों के बीच में रहा है। एक तरफ चीन है तो एक तरफ भारत। एक तरफ रूस है तो एक तरफ मंगोलिया। यह सभी आबादी की दृष्टि से, सैनिक शक्ति, आर्थिक शक्ति और राजनीतिक शक्ति की दृष्टि से तिब्बत से बहुत अधिक शक्तिशाली रहे हैं। परन्तु 13वीं शताब्दी में लगभग 35 से 40 वर्ष के समय को छोड़कर, बाकी जब तिब्बत का साम्राज्य 200 ईसा पूर्व में प्रारंभ हुआ था, तब से लेकर 1951 तक अधिकांश समय तिब्बत एक छोटा और बहुत कम जनसंख्या वाला राष्ट्र होते हुए भी किसी दूसरे राष्ट्र के अधीन नहीं रहा। हमेशा एक पूर्ण-सम्पूर्ण स्वाधीन राष्ट्र के रूप में रहा। इसलिए तिब्बत पर एक विशाल शक्तिशाली राष्ट्र का उपनिवेश होना या उस पर कब्जा करना, महज शक्ति प्रदर्शन के लिए यह केवल राजनीतिक घटना नहीं थी।

मंगोलिया ने जिंगीसखान के समय में तिब्बत पर कब्जा अवश्य किया था, लेकिन उसने 40 वर्ष के भीतर ही तिब्बत की स्वाधीनता तिब्बती के हाथों सौंप दी थी। बहुत निकट समय में भी देखें तो 1904 में ब्रिटिश इंडिया ने ल्हासा तक पूर्ण रूप से सैन्य बल पर कब्जा कर लिया था। वह तिब्बत को अपने अधीन बनाए रखना चाहते तो बनाए

रख सकते थे। तिब्बतियों के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं थी कि ब्रिटिश सैनिकों के विरोध में शक्ति से अथवा अन्य कूटनीति से उबर सकें। लेकिन, ब्रिटिश ने यही ठीक समझा कि तिब्बतयों को ऐसी स्थिति में छोड़ दिया जाए जो ब्रिटिश इंडिया के लिए लाभजनक बनी रहे। उनसे लाभ की पूर्ति कर ली जाए और फिर उनको अपने कब्जे में भी न रखा जाए। इसी सोच के साथ तिब्बतियों के साथ युद्ध विरोधी संधि की गई थी। उसके बाद 1913 और 1914 में शिमला संधि के माध्यम से दोनों देशों ने एक दूसरे को संप्रभुता संपन्न देश मानकर कुल चार बार संधि की। इस संधि के मूल में यह बात थी कि जो कुछ व्यापार और व्यावसायिक गतिविधि ब्रिटिश इंडिया और तिब्बत के बीच होना था, वह अपनी गति से चलता रहे।

परन्तु 1951 में तिब्बत चीन के कब्जे में आया। चीन ने ऐसा क्यों किया? कैसे किया? फिर उससे हम उबर क्यों नहीं पाए? इस पर व्यापक दृष्टि से अवलोकन करने की आवश्यकता है। चीनी साम्यवादी क्यों हुए? और दुनिया में साम्यवाद का उदय क्यों हुआ? फिर इसकी वजह से एशिया के साथ-साथ रूस और चीन में भारी उथल-पुथल क्यों देखने को मिला? मैं समझता हूँ कि ये सभी के सभी आधुनिक स्वायत्तता और तथाकथित यांत्रिक और औद्योगिकता के कारण एक नई संस्कृति इस जगत में उत्पन्न हुई। पूँजीवाद और पूँजीवाद के शोषण की प्रतिक्रिया के रूप में समाजवाद, साम्यवाद, मार्क्सवाद आया। इसकी वजह से ही दुनिया में दो महायुद्ध हुए। बहुत सारे परिवर्तन हुए, जिसे हम आप देखते और समझते रहे हैं।

माओत्से तुंग के दिमाग में विश्व को मुक्त कराने की एक परिकल्पना थी। पूँजीवाद और समाजवाद जैसी दो विचारधाराओं के संघर्ष के प्रतिरूप में नया विचार उनके मन में आया था। और उस अभियान के लिए तिब्बत पर पूर्ण रूप से कब्जा करना प्राथमिकता और अनिवार्यता के रूप में समझा गया, तो इसलिए कि एक वैश्विक अर्थव्यवस्था के अंतर्गत शोषित और शोषक वर्ग के संघर्ष के परिणामस्वरूप विश्व में

बहुत सारे लोगों ने अनेक कठिनाइयाँ झेलीं। कई परिवर्तन हुए जो राजनीतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक क्षेत्र से संबंधित थे। बहुत कुछ बदला। मैं समझता हूँ कि इसका मूल कारण पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की शोषण-प्रक्रिया के विरोध का एक अहिंसक माध्यम है। इसकी व्यावहारिक जानकारी लोगों को नहीं थी तो हिंसात्मक प्रतिक्रिया में एशिया और यूरोप के बहुत से देश और वहाँ की जनता को अपनी जान गँवानी पड़ी। कत्लेआम हुए। सांस्कृतिक नुकसान हुए। यह दो व्यवस्था के संघर्ष और उसके परोक्ष परिणाम की वजह से हुआ। इसलिए तिब्बत की समस्या एक संपूर्ण मानव के व्यापक संघर्ष और द्वंद्व के बीच फँसा हुआ हमें प्रतीत होता है।

गांधीजी ने 'हिंद स्वराज' में भारत वर्ष कैसे पराधीन हुआ, इस पर बहुत गंभीरता से विचार किया है। वही सारे विचार और तर्क तिब्बत के ऊपर भी पूर्णत: लागू होते हैं। पिछले दो-ढाई सौ वर्षों से यूरोप और एशिया का जो राजनीतिक और आर्थिक घटनाक्रम रहा है, वही तिब्बत को वर्तमान स्थिति में पहुँचाने के लिए उत्तरदायी है। हम लोगों को यही प्रतीत होता है। इसलिए इसका समाधान अगर हमें ढूँढ़ना है तो बुद्ध और गांधी के उपदेशों के बीच देखना होगा, क्योंकि द्वेष से द्वेष नहीं मिटाया जा सकता है। मैत्री-भावना से ही द्वेष को जीता जा सकता है। यही सनातन धर्म है। भगवान बुद्ध ने यही कहा है। महात्मा गांधी ने भी यही कहा। ऐसी स्थिति में इस सिद्धांत को दृष्टि में रखते हुए, हमें समस्या का समाधान सोचना होगा। अन्यथा जैसा को तैसा के रूप में जिस प्रकार की हिंसा तिब्बतियों को भुगतनी पड़ रही है, उस रास्ते समाधान मिलने वाला नहीं है। उस पर चलने से समस्या में निरंतर घिरते चले जाएँगे। इसका कोई अंत नहीं होगा। इस बात को परम पावनजी ने समझा और इसमें गांधीजी के उपदेशों का बड़ा योगदान रहा है।

अहिंसा का सिद्धांत हजारों वर्ष पुराना है। गांधीजी ने कोई नया सिद्धांत हमारे सामने रखा हो, ऐसा नहीं है। भगवान बुद्ध, भगवान महावीर और उससे भी पहले ऋषि, मुनि, वैदिक ग्रंथ के साथ-साथ

करीब सभी प्राचीन भारतीय सिद्धांतों में अहिंसा को महत्व दिया गया है। लेकिन, राष्ट्र और राजनीतिक संघर्ष में अहिंसा को कैसे अपनाया जा सकता है, इस पर उन लोगों ने नहीं बताया है। भगवान बुद्ध ने अपने उपदेश में जिस अहिंसा की चर्चा की है, वह आध्यात्मिक क्षेत्र में आता है, परन्तु एक राष्ट्र को चलाने के लिए, एक देश की शासन-व्यवस्था को चलाने के लिए या फिर एक देश को किसी भय और बाहरी शक्ति से मुक्त कराने के लिए अहिंसक साधना कैसे चलाई जा सकती है, इस बात की चर्चा किसी ने स्पष्ट रूप से अपने उपदेश में नहीं की।

इस जगत में सर्वप्रथम महात्मा गांधी ने अपने कार्य और आचरण से अहिंसक साधना को सिद्ध करके बताया। इसको देखकर तिब्बत मुक्ति-साधना 1966 तक आधा अहिंसक और आधा हिंसक रहा। 1967 और 1968 तक आते-आते समस्त हिंसक प्रतिक्रिया समाप्त हो गई। तिब्बत के भीतर और बाहर हमारी मुक्ति का आंदोलन अहिंसात्मक हो सका, इसका पूरा श्रेय महात्मा गांधी जी को जाता है। हम उनके ऋणी हैं। उनके उपदेशों को, विशेष रूप से 'हिंद स्वराज' के उपदेशों को देखकर हमें एक नई दृष्टि मिली है कि राजनीति, अर्थनीति के लिए संघर्ष अहिंसक माध्यम से भी चलाए जा सकते हैं।

संपूर्ण तिब्बत की जनता भीषण कष्ट के बावजूद हिंसक नहीं हुई। परम पावन दलाई लामा जी के निर्देशानुसार हिंसा में लिप्त नहीं हुई। यही हम लोगों की अब तक की एक मात्र पूँजी है। हमारे लिए संतोष का भी यही एकमात्र कारण है। हम ऐसा विश्वास रखते हैं कि संपूर्ण मुक्ति प्राप्त करने तक इसे चला सकेंगे। यहाँ मैं आपसे यह कह सकता हूँ।

वर्तमान तिब्बत की जो परिस्थितियाँ हैं, वह 1951 में तथाकथित 17 सूत्री संधि से प्रारंभ हुई थी। उस समय चीनी नेतृत्व के दिमाग में तिब्बत को पूर्णत: चीन के एक प्रांत के रूप में परिणत करने का विचार नहीं था। वह स्वायत्तशासी पृथक रूप में रहेगा, ऐसा उनके विचार में था। और नेहरूजी को भी यही आश्वासन बार-बार दिया गया था।

परन्तु 1959 में आकर परम पावन दलाई लामाजी का जीवन खतरे

में पड़ गया। उस समय पूरी जनता घबराहट में चीन के विरोध में खड़ी हो गई थी, तब वे विचार और आश्वासन समाप्त हो गए। और तब से एक नई प्रतिक्रिया का युग तिब्बत में चला हुआ है। आप सब यह जानते हैं कि उसकी वजह से लगभग पाँच-छह वर्षों तक विद्रोह का दमन करने के लिए जो कुछ चला, वह बहुत ही दुखद कहानी है। उस कहानी को मैं यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं समझता हूँ, उसके तत्काल पश्चात समस्त सांस्कृतिक क्रांति के रूप में जो विध्वंस हुआ, वह भी स्पष्ट है। इन दोनों के चलते 20 प्रतिशत जनता खत्म हो गई। उससे पहले तिब्बत के किसी भी इतिहास के साथ-साथ संपूर्ण विश्व के किसी भी इतिहास में इस प्रकार की घटना नहीं मिलती है।

1988 तक आते-आते थोड़ी राहत मिली। तिब्बत में पूर्ण दमन और विद्रोह दोनों हुआ। 1994 में तिब्बत के विषय में जो उनके कार्य दल की बैठक हुई थी, उसका निष्कर्ष था कि तिब्बत की संस्कृति, भाषा, बौद्ध धर्म, दलाई लामा जी के प्रति श्रद्धा यह सब पृथकवाद के मूल कारण हैं। यही तिब्बत के संपूर्ण रूप से चीन में सम्मिलित नहीं हो पाने के कारण हैं। इसलिए इन सबको हटाना होगा। मैं समझता हूँ कि इस विचार की उपज के मूल में यह भाव था, यह माना जाता था कि तिब्बत की समस्या कुछ वर्षों की है। जब नई पीढ़ी शिक्षित हो जाएगी और उनको साम्यवाद की शिक्षा ठीक तरीके से दी जाएगी, तो तिब्बत चीन का एक अंग स्वयं हो जाएगा। फिर उन्हें कोई दिक्कत नहीं आएगी। शिक्षित वर्ग साम्यवादी जरूर बने, लेकिन वे चीन के आज्ञाकारी नहीं बन पाए। एक राष्ट्र के रूप में तिब्बत को अपना हक चाहिए। उसे अपना शासन स्वयं चलाना चाहिए, ऐसे विचार वाले लोग ही आने लगे। 1994 से आगे की घटनाओं को देखें तो यह समझ में आता है कि निरंतर चीन का शिकंजा कसता चला गया है और वे कठोरतम होते चले गए।

पाँचवें कार्यदल की संस्तुति में इस बात पर बल दिया गया कि पृथकवाद के विरोध में कितनी कठोर दंड व्यवस्था होनी चाहिए। साथ ही इस बात पर जोर दिया गया कि आर्थिक विकास की तरफ और

अधिक ध्यान दिया जाए ताकि तिब्बतियों के पृथकवाद की सोच को समाप्त किया जा सके। हालाँकि, वे इस सोच के साथ आगे बढ़ते गए कि निरंतर सैन्य और अर्द्ध-सैन्य बल के माध्यम से दंडात्मक रुख अपनाते हुए ही तिब्बत को कब्जे में रखा जा सकता है। अन्यथा कोई दूसरा रास्ता नहीं है। मैं समझता हूँ कि इसी सोच की वजह से वर्तमान परिस्थिति पैदा हो गई है।

तिब्बत की वर्तमान परिस्थिति को कुछ बिंदुओं के माध्यम से बेहतर तरीके से समझा जा सकता है। इनमें से एक जनसंख्या है। 1951 में तिब्बत की जनसंख्या में तिब्बती 96 प्रतिशत थे, जबकि चार प्रतिशत गैर-तिब्बती लोग थे। अब 2010 की जनगणना का आँकड़ा तो हमारे पास अभी नहीं है, लेकिन सन् 2000 की जनगणना के अनुसार तिब्बतियों की जनसंख्या 54 लाख है, जबकि गैर-तिब्बतियों की जनसंख्या 78 लाख है। यह आँकड़ा उस स्थिति में है, जबकि तिब्बत में स्थायी रूप से बस चुके सैनिकों और कुमाराचार्यों की गिनती इसमें नहीं की गई है। अब इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि जब सन् 2000 में ही जनसंख्या का संतुलन इतना बदल गया था तो 2012 में क्या स्थिति होगी। यह भी जानना जरूरी है कि तिब्बत पर शासन करने के लिए उसे 12 भागों में विभाजित करके रखा गया है।

अब जैसा कि मैंने कहा है कि कार्यदल की संस्तुति को ध्यान में रखते हुए हमारी संस्कृति और धार्मिक आस्था को नष्ट करने के लिए योजनाबद्ध तरीके से काम किया गया। इसके लिए तिब्बती संस्कृति और धर्म की आधार, भाषा को ही मिटाने की कोशिश होती रही। जुलाई 2010 में बीजिंग में शिक्षा की 10 वर्षीय योजना तैयार की गई। इसमें कहा गया कि शिक्षा का बहुभाषीय माध्यम उचित नहीं है। इसमें विद्यार्थियों को कम अंक प्राप्त होते हैं। वे सफल नहीं हो रहे हैं, इसलिए विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं को छोड़कर केवल चीनी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाए। यह अधिक उपयोगी होगा। इसका असर यह हुआ कि विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा के भाषाई माध्यम को बदल

दिया गया। इसका विरोध जरूर हुआ और विरोध की हवा अब भी चल रही है। यहाँ कुल लब्बोलुआब यह है कि तिब्बती संस्कृति और धर्म को नष्ट करने के लिए भाषा को माध्यम बनाया गया और यह प्रक्रिया अभी चल रही है। इससे दो साल पूर्व ही तिब्बत के स्वायत्तशासी क्षेत्र टार के विश्वविद्यालयों में सभी पाठ्यपुस्तकों को बदल दिया गया था। दुर्भाग्य से इसका विरोध करने की हिम्मत किसी ने नहीं की।

इसी प्रकार सभी विहारों और मठों में भिक्षु व भिक्षुणियों की संख्या निर्धारित कर दी गई। इसका असर हम इस रूप में देखते हैं कि 1994 के बाद सभी विहारों में भिक्षु और भिक्षुणियों की संख्या में तेज़ी से कमी आई है। वहीं इस तरह का प्रशिक्षण निरंतर चलाया जा रहा है कि राष्ट्र के प्रति भक्ति-भावना में वृद्धि कैसे हो। लगातार राजनीतिक प्रशिक्षण दिए जा रहे हैं। ऐसा कर तिब्बत की सम्पूर्ण संस्कृति और भाषा को नष्ट करने की सुनिश्चित चेष्टा हो रही है। इसके साथ-साथ लोगों की जीवनशैली बदलने की कोशिश की जा रही है। जो लोग अपने पालतू पशुओं के साथ अस्थायी रूप से इधर-उधर जाकर निवास करते थे, उनका निवास निश्चित कर दिया गया। आजीविका के लिए पालतू पशुओं को रखने की संख्या भी निश्चित कर दी गई। इसके बाद बड़ी संख्या में पालतू पशुओं की हत्या कर दी गई। ऐसी स्थिति में उन 35 प्रतिशत तिब्बतियों की जीवनशैली पूरी तरह बदल गई, जिनका जीवन पशुपालन पर आश्रित था। कृषि के साथ भी यही हुआ। रसायन युक्त खेती और उसकी एकरूपता ने इस व्यवस्था से जुड़े लोगों के जीवन को बदल दिया। कुल मिलाकर एक ऐसा माहौल बनाया गया, जिससे गाँव के लोगों को भी चीनी भाषा नहीं जानने पर जीवन असंभव-सा प्रतीत होने लगा।

शिक्षा के क्षेत्र में भी ऐसी ही स्थिति पैदा कर दी गई। 2005 में एक प्रतिवेदन हम लोगों को मिला। उसमें कहा गया कि टार (तिब्बत स्वायत्तशासी क्षेत्र) में निरक्षरों की संख्या 45 प्रतिशत है। इनमें हर उम्र के लोग शामिल हैं। वहीं टार के बाहर के कई क्षेत्रों में निरक्षरता का प्रतिशत छह या सात के बीच है।

2005 में आकर चीन का शासन करीब 60 बरस होने को था। इसके बावजूद तिब्बत के बहुत सारे क्षेत्र में साक्षरता की संख्या पहले की अपेक्षा काफी कम रह गई है। वहीं भाषा की जानकारी को भी समाप्त करने का सुनियोजित कार्यक्रम, गैर सरकारी संस्थाओं के माध्यम से, विद्यालयों में चलाया जा रहा था। इस बात का सही आँकड़ा मेरे पास अभी नहीं है, लेकिन एक अनुमान है कि विहारों या गैर-सरकारी संस्थाओं के माध्यम से व्यक्तिगत स्तर पर तिब्बती भाषा और संस्कृति को सिखाने के लिए जो विद्यालय खोले गए थे, उनमें 80 प्रतिशत को 2008 के बाद तेज़ी से बंद करा दिया गया है।

इस परिस्थिति को समझने के लिए हमें तिब्बत की भौगोलिक स्थिति को भी समझना होगा। तिब्बत एक ऐसा उच्च स्थल है, जो सम्पूर्ण एशियाई देशों में बहने वाली 10 महत्वपूर्ण नदियों का उद्‌गम स्थल है। वो नदियाँ हिंदुस्तान में जाती हों, चीन में जाती हों या पाकिस्तान में। पर्यावरण की दृष्टि से इन नदियों की स्थिति गंभीर रूप ले चुकी है। वहाँ के पर्यावरणविदों ने सन् 2007 में जो प्रतिवेदन दिया था, उसके अनुसार उन दस नदियों में से चार नदियाँ ऐसी हैं जो बहुत जल्द लुप्त होने वाली हैं, यानी सूखने वाली हैं। बाकी छह नदियाँ या तो प्रदूषित हैं या उसका बहाव बहुत कम है। 1950 में इन दस नदियों के ऊपर कुल 22 बाँध हुआ करते थे। चीनी सरकार के दस्तावेज के अनुसार ही इन 10 नदियों के ऊपर सन् 2000 तक 22,000 छोटे बड़े बाँध या विद्युत योजना स्थापित हो चुकी हैं। हालाँकि इन नदियों के ऊपर 3.1 बिलियन एशियाई पीने के पानी, खेती और दूसरे कामों के लिए निर्भर हैं। तिब्बत में ग्लेशियर का विशाल भंडार है, इसलिए तिब्बत को एक प्रकार से तीसरा पोल यानी नॉर्थ और साउथ पोल की तरह माना गया है, जिसमें 46 हजार चिन्हित ग्लेशियर होते थे। और जो 1.5 लाख वर्ग क्षेत्र में फैला था। यूएन की रिपोर्ट के अनुसार ये ग्लेशियर 100 साल के अंदर समाप्त हो जाएंगे। वर्तमान में जो ग्लेशियर पिघलकर तालाब या झील का रूप ले चुके हैं, इसकी संख्या 8,790 के करीब है। इनमें से 204

झीलों को बेहद खतरनाक बताया गया है, जो कभी भी फट सकते हैं। ऐसी स्थिति में भीषण विनाश की संभावना बनी हुई है। इसकी चपेट में चीन, भारत और पाकिस्तान के साथ-साथ बांग्लादेश भी आ सकते हैं।

ऐसी घटनाओं के कुछ उदाहरण हमारे सामने हैं, लेकिन भविष्य में इसके भीषण रूप में आने की संभावना बनी हुई है। तापमान में जिस तरीके से वृद्धि हो रही है, उस हिसाब से 2030 तक तापमान 22 डिग्री सेंटीग्रेड से बढ़कर 26 डिग्री सेंटीग्रेड हो जाएगा। इस तापमान में और वृद्धि हो सकती है। अनुमान है कि ऐसी स्थिति में लगभग 60 प्रतिशत ग्लेशियर समाप्त हो जाएँगे। ऐसी हालत में घास के विशाल मैदान बड़ी तेज़ी से रेगिस्तान में बदल जाएँगे। 2008 की यूएनडीपी रिपोर्ट को देखें तो पता चलता है कि घास के मैदान तेज़ी से रेगिस्तान में बदलने लगे हैं। इस हिसाब से आने वाले महज 20 वर्षों में तिब्बत के लगभग सभी घास के मैदान रेगिस्तान हो जाएंगे। इस विषय पर अध्ययन कर रहे लोग यही बता रहे हैं।

तिब्बतीय क्षेत्र में जितने वन क्षेत्र थे, उनमें से 50 प्रतिशत जंगल को 1998 तक काटा जा चुका था। अभी जो जंगल बचे हैं, वे 50 प्रतिशत से भी कुछ कम ही हैं। 1998 की बात है, तब यांगत्से नदी में भीषण बाढ़ आई थी, जिससे चीन में लाखों लोग प्रभावित हुए थे। इसके बाद से जंगलों को उजाड़ने के काम में थोड़ी कमी आई है, लेकिन यह प्रक्रिया अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। वहीं प्राकृतिक संसाधन की बात करें तो उनके (चीनी सरकार) दस्तावेजों के मुताबिक 126 विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थ यानी सोना, चांदी, कीमती पत्थर के साथ-साथ कोयला, लोहा, जिंक, यूरेनियम आदि चीजें तिब्बत के क्षेत्र में मिल रही हैं। 1907 में हुए एक भू-गर्भ सर्वेक्षण रिपोर्ट में यह बात कही गई थी कि 40 मिलियन टन कॉपर और 40 मिलियन टन जिंक तिब्बत में मिलेगा। इस हिसाब से देखें तो चीन की अर्थव्यवस्था में तिब्बत की खनिज संपदा का बड़ा योगदान है, जो आगे भी बना रहने वाला है। इसके साथ-साथ चीन रेलवे लाइन बिछाने के ऊपर ज़ोर दे रहा है। वह

मुख्य चीनी क्षेत्र से पाकिस्तान, नेपाल और अरुणाचल प्रदेश के निकटवर्ती क्षेत्र तक रेलवे लाइन बिछाने की अपनी योजना को पूरा करने जा रहा है। उसने 2016 तक इन योजनाओं को पूरा करने का लक्ष्य रखा है। सड़क मार्ग की दृष्टि से देखें तो अब तक पाकिस्तान को जोड़ा जा चुका है। म्यांमार जुड़ने वाला है। नेपाल की राजधानी काठमांडू तक वे आते-जाते हैं। इसे और विस्तार दिया जा रहा है। डुरूमो और त्सोन्ना के बीच सड़क मार्ग बहुत अच्छी तरह जोड़ा जा चुका है। तिब्बतीय क्षेत्र में फिलहाल 16 विशाल हवाई अड्डे काम कर रहे हैं। इनमें से चार हवाई अड्डे बेशक नागरिक सेवा के लिए हैं, लेकिन वहाँ भी सभी सैन्य सुविधा उपलब्ध है। सेना कभी भी उसका उपयोग कर सकती है। अभी पाँच हवाई अड्डे निर्माणाधीन हैं, जो आने वाले पाँच साल में बनकर तैयार हो जाएंगे।

हमें चीन की सरकार के आँकड़े तो उपलब्ध नहीं होते हैं, लेकिन अन्य शोधार्थियों के अनुसार इस समय तिब्बत के क्षेत्र में पीपुल्स रिवॉल्युशन आर्मी की सैन्य संख्या छह लाख है, जबकि अर्ध-सैनिक बलों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है। इतना ही नहीं, चीनी सरकार के आँकड़े के अनुसार 19 जुलाई, 1995 तक तिब्बत के 20 वर्ग मीटर क्षेत्र को पूरी तरह परमाणु कचरे से पाट दिया गया है। यह कार्य निरंतर जारी है, लेकिन हमें इसके बाद कोई आँकड़े तो नहीं मिले हैं, पर स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। 14 अप्रैल, 2010 में चीन के यूशु क्षेत्र में भूकंप आया था, जिसमें करीब 3000 तिब्बती नागरिक हताहत हुए थे। यह संशय बना हुआ है कि यह कोई प्राकृतिक आपदा थी या बनावटी भू-चाल था। संशय इसलिए बना हुआ है, क्योंकि उस क्षेत्र में जो नए निर्माण की प्रक्रिया चल रही है, उसके लिए सभी तिब्बती जनता को बेदखल कर चीनी नागरिकों को बसाया जा रहा था या उनके कार्यालय खोले जा रहे थे। यह भी देखने में आया है कि जिस दिन आपदा आई, उस दिन वहाँ रहने वाले चीनी अधिकारियों में एक भी क्षेत्र में मौजूद नहीं थे। ऐसे साक्ष्य भी मिल रहे हैं कि पूर्व योजना के अनुसार बीजिंग

से जो तीन पर्यटक दल वहाँ आने वाले थे, उन्हें भी क्षेत्र में आने से मना कर दिया गया था। अब जहाँ ऐसी परिस्थितियाँ हों, वहाँ के लोगों की मन:स्थिति का महज अनुमान ही लगाया जा सकता है।

तिब्बत के क्षेत्र में मानवाधिकार की बात भी होती है, लेकिन जिस देश में मानवाधिकार नाम की कोई चीज ही नहीं है और इसका कोई सिद्धांत ही नहीं है, वहाँ मानवाधिकार की बात करना बेकार की चीज मालूम होती है। इस समय जो बहुत कठिनाई से सूचनाएँ बाहर आ रही हैं, उसके अनुसार आज की तारीख में 1392 राजनीतिक बंदी हैं। मैं समझता हूँ यह बहुत छोटी संख्या है, क्योंकि अधिकांश सूचनाएँ हमें नहीं मिल पा रही हैं।

वर्तमान स्थिति में सांस्कृतिक दृष्टि से, शिक्षा की दृष्टि से, भाषा की दृष्टि से, पर्यावरण की दृष्टि से, आर्थिक दृष्टि से, जीवनशैली की दृष्टि से, तिब्बत में जो घटनाएँ हो रही हैं, उसकी एक तस्वीर मैंने आपके सामने रखने की कोशिश की है।

अब इस समय एक नए विचार आए हैं। 2010 में परम पावन दलाई लामा जी ने यह विचार दिया था कि चीन के संवैधानिक प्रावधान के अनुसार तिब्बतीय स्वायत्तता की बात हो। इस विचार को कैसे कार्य रूप दिया जाए, इसके लिए चीन की सरकार को एक ज्ञापन दिया गया था। इसके एक सप्ताह बाद ही चीन के एक विद्वान ने एक निबंध लिखा था, जिसमें उन्होंने कहा कि चीन के संविधान में अल्पसंख्यकों को स्वायतत्ता देने का जो प्रावधान है, वह गलत है। इसे हटा दिया जाना चाहिए। इसकी जगह भारत के संविधान के उस स्वरूप को अपनाना चाहिए, जहाँ अल्पसंख्यक होने की वजह से उन्हें कोई राजनीतिक सुविधा प्राप्त नहीं होती है। हालाँकि, इसके बाद चीन में कोई संविधान संशोधन तो नहीं हुए हैं, लेकिन 2012 में चीन के एक प्रमुख व्यक्ति ने अपने लेख में इस बात को पुन: दोहराया था, जिसे हम सरकारी दस्तावेज भी मान सकते हैं। इसलिए बहुत आश्चर्य की बात नहीं होगी कि निकट भविष्य में चीन के संविधान में संशोधन कर ऐसे सभी विकल्पों को पूरी तरह समाप्त

कर दिया जाए और चीनी एकरूपता को ही सर्वाधिक महत्व दिया जाए।

इतनी बातों को कहने के बाद यह महसूस किया जा सकता है कि चीन की परिस्थिति कितनी असहनीय हो गई है। फरवरी 2009 से लेकर अप्रैल 2012 तक करीब 36 लोगों ने आत्मदाह कर लिया है। इसका अर्थ यह है कि मृत्यु को जीवन से ज्यादा सरल और सुगम समझने की मजबूरी वहाँ आ चुकी है। यहाँ अधिक कुछ भी कहने की जरूरत नहीं है, केवल इन लोगों के निर्णय करने की मनोदशा से वहाँ की परिस्थिति को समझा जा सकता है। जिन लोगों ने आत्मदाह किया है, उनमें से सबसे अधिक उम्र के व्यक्ति की आयु 44 साल थी। दूसरे की 40 साल थी। बाकी सभी 22 साल से कम उम्र के युवक थे। ये वे युवक थे, जिन्होंने चीन के शासन में जन्म लिया और वहीं शिक्षा ग्रहण की। फिर वर्तमान परिस्थिति से मजबूर होकर आत्मदाह करने को मजबूर हो रहे हैं। यह भी देखने और समझने वाली बात है कि जिन 36 लोगों ने आत्मदाह किया है, उसमें से एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं था, जिसने किसी दूसरे को हानि पहुँचाने की कोशिश की हो।

दरअसल अहिंसा के प्रति प्रतिबद्धता और पूर्ण समर्पण की भावना ही हमारी साधना का मूल बिंदु है। हम न केवल शारीरिक अहिंसा अपितु मानसिक स्तर पर भी द्वेष और क्रोध को समाप्त कर एक सही सत्याग्रह के रास्ते पर चलकर तिब्बत की समस्या का निश्चित समाधान निकाल सकते हैं। निश्चित रूप से इसमें आप सब, विशेषकर गांधीजी के अनुयायी, हमारे विशेष बल हैं। वे हमारी विशेष सहायता कर सकते हैं। आप लोगों के आशीर्वाद और समर्थन से तिब्बत की मुक्ति-साधना सफल होगी।

आप लोगों ने मेरी बातों को ध्यान से सुना और विशेषकर गांधी शांति प्रतिष्ठान में मुझे जो सम्मान दिया गया, संकोच के साथ उसका मैं दिल से आभार व्यक्त करता हूँ।

•••